ज्ञानगंगा

वेद को पढ़ना पढ़ाना चाहिए । वेद को सुनना सुनाना चाहिए ।
वेद के अनुकूल ही हे आर्यो ! आचरण अपना बनाना चाहिए । ।

—पं. प्रकाशचन्द्र कविरत्न

वेदों के अध्ययन एवं अनुशीलन से प्रतीत होता है कि जैसे नदियों में गंगा, वृक्षों में पीपल, दही में मक्खन और पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार गिन्नीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉड्स के अनुसार वेद संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम ग्रंथ है । अतः संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के अधिकारियों ने विवेकपूर्ण निर्णय लेकर चारों वेदों को भारत से मंगवाकर अपने पुस्तकालय में मानवकल्याण के प्रथम ज्ञानग्रंथ के रूप में मान्यता प्रदान की है । इसके अतिरिक्त अमेरिकी संसद् में भी गायत्री मंत्र का उच्चारण और शांतिपाठ की ध्वनि सारे संसार को सुनाई दी है । क्योंकि ये दोनों मंत्र सारे संसार के कल्याण की कामना, शान्ति तथा समृद्धि के सूचक हैं और इनमें किसी विशेष सम्प्रदाय का वर्णन नहीं है । वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । इन चारों वेदों का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में क्रमशः चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदयों में परमात्मा द्वारा प्रकट हुआ । वेद के चार अर्थ हैं—ज्ञान, शक्ति, विचार और लाभ । संसार की सारी समस्याओं का समाधान केवल वेदों में है । इन का समाधान गीता, पुराण, बाइबल, क़ुरान आदि में नहीं है । क्योंकि वेदों के अतिरिक्त संसार के सारे ग्रंथ मानव द्वारा रचित हैं । परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है । क्योंकि वह सर्वव्यापक हैं सारे संसार में परमात्मा की अद्भुत एवं अद्वितीय लीला दिखाई दे रही है जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है—

क्या बताऊँ कि मुझे क्या-क्या नज़र आता है ।
ज़र्रे ज़र्रे में तेरा जलवा नज़र आता है ।।
खिली जो कलियाँ नज़र आया तेरा मुस्कराना ।
गुलों में मुझको तेरा हँसना नज़र आता है ।।
उषा की सुरखी में सुरखी तेरे रुखसारों की ।
हर एक अदा में तू इठलाता नज़र आता है ।।

वेद कोई तोता-मैना की पुस्तक नहीं है । इनमें परोक्षवाद है । शब्द कुछ हैं और उनके अर्थ कुछ और ही हैं । जैसे कि महर्षि दयानन्द जी ने कहा था–

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जो इस पर खरा उतरे ले लो । शेष सब छोड़ दो । व्यर्थ के व्यामोह (अज्ञानता) में न पड़ो ।

वेदों में 20,416 मंत्र, 1,53,826 शब्द, 8,64,000 अक्षर और 24,000 छंद हैं । वेद स्वतः प्रमाण हैं । इसका अर्थ यह है कि इन्हें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है । अतः इन में मिलावट नहीं की जा सकती है । इनके अतिरिक्त सारे ग्रंथ परतः प्रमाण हैं, इन्हें वेद प्रमाण की आवश्यकता है । इन में मिलावट भी है । वेद प्रभु द्वारा प्रकट हुए हैं जबकि अन्य ग्रंथ मानवकृत हैं । ऋग्वेद की एक सूक्ति है–

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् । -10.53.6

पहले स्वयं मानव बन और फिर देवताओं के समान विश्वकल्याण के लिए हितकारी संतान उत्पन्न कर । मानव बनने के लिए निम्नलिखित चार वस्तुएं आवश्यक हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । व्यक्ति इन चारों को अपने जीवन में अपनाकर ही मानव बन सकता है । जैसे कवि सतपाल 'पथिक' लिखते हैं–

किसी के काम जो आए उसे इन्सान कहते हैं ।
पराया दर्द अपनाए उसे इन्सान कहते हैं ।

यूँ भरने को तो दुनियाँ में पशु भी पेट भरते हैं ।
''पथिक'' जो बाँट कर खाये उसे इन्सान कहते हैं ।।

प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रभुप्रतिनिधि बनकर सृष्टि में मानवता का प्रादुर्भाव एवं प्रकाश करें । यही मानव धर्म है परन्तु आज न जाने मानव को क्या हो गया है ? न वह केवल अपने को मानव कहता है, न वह मानवता को अपना धर्म समझता है । मानवता के अतिरिक्त मानव का धर्म और हो ही क्या सकता है ? परन्तु आज उल्टी गंगा बह रही है ।

एक कुत्ते से पूछिए तू कौन है ? उत्तर मिलेगा कि मैं कुत्ता हूँ । इसी प्रकार एक गधे से पूछिए कि तू कौन है ? उत्तर मिलेगा मैं गधा हूँ आदि । परन्तु आप किसी मानव से पूछिए कि आप कौन हैं ? तो मैं मानव हूँ । ऐसा उत्तर न मिलकर कोई कहेगा कि मैं हिन्दू हूँ, कोई कहेगा मैं मुसलमान हूँ आदि । आज मनुष्य मनुष्य का वैरी हो रहा है । आज का इन्सान, इन्सान न बनकर शैतान बन बैठा है । यदि संसार सारे वेदमंत्रों को भुला दे तो अकेली 'मनुर्भव' वेदसूक्ति ही सारे संसार को एकता के सूत्र में बांध सकती है जब कि अन्य सम्प्रदाय संसार को बाँटते हैं । क्योंकि इसमें मानव बनने का दिव्य संदेश समूची मानवता के लिए दिया गया है । यही वेद-निर्देश है, यही वेद-उपदेश है और यही वेद-संदेश है । अतः मैं संसार के लोगों से निवेदन करता हूँ कि वे वेदों की और लौटे और उनकी शरण में आये ।

धनहीन कहे धनवान् सुखी, धनवान् कहे सुख राजा को भारी ।
राजा कहे चक्रवर्ती सुखी, चक्रवर्ती कहे सुख इन्द्र को भारी ।।
इन्द्र कहे चतुरानन सुखी, चतुरानन कहे विष्णु को सुख भारी ।
तुलसीदास विचारि कहे, प्रभुभक्ति बिन सब लोक दुखारी ।।

--तुलसीदास

संसार में विभिन्न विचारधारा के व्यक्ति हैं । अतः अनेक विचार, समस्याएं, पंथ एवं ग्रंथ हैं । प्रत्येक व्यक्ति का पृथक्-पृथक् अस्तित्व, व्यक्तित्व एवं कृतित्व है । परन्तु सबकी मांग एक ही है--सुख, शांति और आनंद । सुख मिलता है भोग से, शान्ति मिलती है योग से और आनन्द मिलता है प्रभु की निरंतर, निष्काम एवं अनन्य भक्ति से । क्योंकि सुख शरीर का, शांति मन का और आनन्द ही परमात्मा है अर्थात् आनन्द परमात्मा का पर्यायवाची शब्द है । हम केवल सुखी होना नहीं चाहते अपितु दूसरे से अधिक सुखी होना चाहते हैं इसलिये दुःखी हैं । वस्तुतः संसार का कोई भी सुख ऐसा नहीं है जिसमें दुःख न मिला हुआ हो । सुख के साथ दुःख भी अवश्य है । केवल ऐसा प्रभुभक्ति की आज्ञा पालन करने वालों को दुःख होता ही नहीं । यदि होता भी है तो वह बड़े से बड़े दुःख को ऐसे सहन कर लेता है जैसे कुछ हुआ ही न हो । अतः प्रभु आज्ञा में रहो । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में

प्रभु प्यारे से जिसका संबंध है ।
उसे हर वक़्त आनंद ही आनंद है । ।

संसार में निम्नलिखित पाँच प्रकार के सुख हैं–

(1) भोगसुख – इन को शारीरिक सुख , राजसी सुख और तामसी सुख एवं संयोगजन्य सुख भी कहा जाता है । ये सांसारिक विषय भोगों के सुख हैं । परन्तु ये सब भोगसुख निम्न स्तर के सुख हैं क्योंकि इन से सदा दुःख जुड़ा रहता है और दूसरे ये क्षणिक होते हैं । जैसे व्यक्ति के शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से क्षणिक सुख तो मिलता है परन्तु बाद में दुःख मिलता है । ये सब मानसिक सुख कहलाते हैं । जैसे संत शिरोमणि तुलसी दास ''रामचरितमानस'' में लिखते हैं–

बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर, दुर्लभ ग्रंथहि गावा । ।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाई न जेहि परलोक सँवारा । ।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाई ।।
एहि तन कर फल विषय न भाई स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ।।
नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ।।

—उत्तरकाण्ड

तुलसीदास जी कहते हैं कि यह मानव शरीर बड़े भाग्य से मिला है । सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है । यह साधन का धाम और मोक्षद्वार है । अतः इसे पाकर भी जिसने परलोक नहीं सुधारा । वह व्यक्ति परलोक में दुःख पाता है और फिर पीट-पीट कर पछताता है और अपना दोष न समझकर काल, कर्म और प्रभु पर मिथ्या दोष लगाता है । हे भाई ! इस शरीर से प्राप्त होने का फल विषय भोग नहीं है । इस संसार के भोगों की बात ही क्या स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःख देने वाला है । अतः जो व्यक्ति मानव शरीर पाकर इसे विषयों में मन लगा देते हैं तो वे मूर्ख अमृत को छोड़ विष को ग्रहण कर लेते हैं । अतः भक्त शिरोमणि कबीर दास ने कहा है—

झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ।।

अतः हम देखते हैं कि इन सांसारिक भोग निम्न स्तर के माने जाते हैं । परन्तु फिर भी संसार के अधिकांश व्यक्ति इन्हीं को ही वास्तविक सुख मानते हैं परन्तु इन भोगों के पश्चात् दुःख भी आते हैं । इन भोग सुखों का वर्णन एक कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में कितना सुन्दर किया है—

पहला सुख निरोगी काया ।
दूसरा सुख घर होवे माया ।

तीसरा सुख सुशीला नारी ।
चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी ।
पाँचवाँ सुख राज्य में पासा (उत्थान) ।
छठवाँ सुख सुस्थान वासा (निवास स्थान) ।
सातवाँ सुख संतोषी वासा (मन) ।

इन सुखों में सब से बड़ा संतोष सुख है, संतोष शब्द की व्युत्पत्ति सम्+तोष शब्दों से हुई है जिसका भाव है समान रुचि । इसका भाव यह है कि वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट रहना परन्तु इसको बेहतर बनाने के लिये प्रयत्न करते रहना । अतः व्यक्ति को जीवन में सदा संतोष रखना चाहिये क्योंकि संतोष से ही सच्ची शांति, सुख एवं आनंद मिलता है जैसे कहा जाता है संतोषी सदा सुखी और लोभी सदा दुःखी । कहा जाता है संतोषी सदा सुखी और लोभी सदा दुःखी । जैसे कबीर ने कहा है–

गोधन, राजधन, बाजधन और रतन धन खान ।
जब आवै संतोष धन सब धन, धुरि समान । ।
परन्तु आचार्य चाणक्य लिखते हैं–
संतोषस्त्रिषु कर्त्तव्य स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने, तप-दानयोः । ।

तीन स्थानों पर संतोष करना चाहिये अपनी स्त्री, अपने भोजन और अपने धन पर । परन्तु तीन स्थानों पर संतोष कभी भी नहीं करना चाहिए – शास्त्रों के अध्ययन, तप और दान में । अर्थात् इन्हें जितना हो सके बढ़ाते रहना चाहिए ।

परन्तु संसार के अधिकतर व्यक्ति संतुष्ट नहीं है वे दिन भर उचित व अनुचित ढंगों से कमाते हैं और रात भर उचित व अनुचित ढंगों से विषय-विकार में लिप्त रहते हैं । जैसे कबीर जी लिखते हैं–

सुखिया सब संसार है खावे और सोवे ।

दुःखिया दास कबीर है जागे और रोवे ।।

अकबर इलाहाबादी लिखते हैं–

हे हबीब (दोस्त) क्या कार-ए-नुमायाँ (विशेष काम) कर गये ।

बी.ए. हुये, नौकर हुये, पैंशन मिली और मर गये ।।

2. दानसुख – इसको आत्मिक, सात्विक जड़-चेतन संयोग जन्य सुख भी कहा जाता ह । अतः आत्मिक उन्नति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामर्थ्य के अनुसार ज़रूरतमन्द व सुपात्र को अवश्य दान देना चाहिये । जैसे यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था–

मरने के बाद क्या साथ जाता है ?

इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–

मरने के पश्चात् दान साथ जाता है ।

अतः दान को भोगों से उच्च स्तर का सुख माना जाता है ।

3. ज्ञानसुख – दान सुख से भी उच्च स्तर का सुख ज्ञानसुख है । अतः व्यक्ति को इसकी प्राप्ति के लिये अच्छे-अच्छे धार्मिक ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण, गीता, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका, संस्कारविधि आदि सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिये । आर्ष ग्रंथों के अध्ययन करने से ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है जिससे मनुष्य अपने अंतःकरण में ही आनन्द का अनुभव करने लगता है ।

4. ध्यानसुख – सांसारिक सुखों में यह सर्वश्रेष्ठ सुख माना गया है । परन्तु साधारण व्यक्ति का ध्यान नहीं लगता । यदि वह पहले यम, नियम का पालन करेगा और उसके बाद निरन्तर अभ्यास करने से ध्यान लग जाता है । जैसे महर्षि कपिल लिखते हैं–

ध्यानं निर्विषयं मनः —सांख्यदर्शन 6.25

जब तक मन विषयरहित नहीं हो जाता तब ध्यान नहीं लग सकता ।

5. सच्चासुख – इसको विभिन्न ग्रंथों में शाश्वत सुख, आनन्द, शान्ति, अमृत, चेतन, संयोगजन्य सुख-दुःखनिवृत्ति भी कहा गया है ।

यह स्थायी होता है । यह सदा बढ़ता रहता है । इसको प्रेमानंद या ब्रह्मानंद भी कहा जाता है । सुख और आनंद में केवल यही अंतर है कि सुख हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों-आँख, कान, नाक, जीभ एवं स्पर्श से मिलता है जबकि आनंद हमें सुषुप्ति अवस्था (गहरी नींद), परोपकार और समाधि में प्रभु द्वारा मिलता है । वस्तुतः सुख-दुःख, लाभ-हानि, उत्थान-पतन, संयोग-वियोग जन्ममरण, फूल-कांटे जुडवां भाई हैं और साथ-साथ रहते हैं । परन्तु जो व्यक्ति आसक्ति व मोह-ममता से रहित होता है, वही आनंद का अनुभव करता है क्योंकि संसार में प्रत्येक शब्द का विलोम होता है जैसे सुख का दुःख, जीवन का मृत्यु, लाभ का हानि आदि परन्तु आनन्द (Bliss) शब्द का विलोम शब्दकोश में नहीं है । जिस व्यक्ति को आनन्दानुभूति होती है उसको ''गीता'' में स्थितप्रज्ञ के नाम से पुकारा गया है । यह न कर्म द्वारा और न ज्ञान द्वारा मिलता है । परन्तु यह प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के पश्चात् निरंतर, निष्काम, अनन्य प्रभुभक्ति के उपरांत भगवत्प्राप्ति हो जाने के पश्चात् मिलता है । जैसे कि ऋग्वेद में कहा गया है :– **ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम** (ऋग्वेद 6.52.5) हम सदा आनंदित और प्रसन्न मन रहे । इसी प्रकार एक उर्दू शायर ने लिखा है :–

सूरज सफर में है, चांद सितारे सफर में हैं,
जमीन सफर में है और आसमाँ सफर में हैं ।

तस्कीने-दिल (मन की शान्ति) के वास्ते हर शै है बेकरार,
तस्कीने-दिल के वास्ते सारे सफर में हैं ।
फिर भी यहाँ हर चीज मिलती है, पर तस्कीने-दिल नहीं मिलता ।।

यदि किसी भाग्यशाली व्यक्ति को ऊपरलिखित पाँच प्रकार के सुख मिल भी जायें और यदि उस व्यक्ति के प्रियजन जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति या पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि उसका प्रवेश, देश-काल अनुकूल नहीं है तो वह भी सुखी नहीं हो सकता । जैसे जब महर्षि दयानंद फरूखाबाद में गंगातट पर समाधि लगाये बैठे थे तो उसी समय एक महिला अपने मृतक बच्चे को आधी धोती में लपेट कर लाई और उसे गंगा में बहाते समय वह धोती उसके ऊपर से उतार कर अपने तन पर लपेट ली । यह दृश्य देखकर महर्षि की समाधि भंग हो गई । उस महिला की दयनीय दुर्दशा को देखकर वे रो लगे । तभी तो कहा है कि यदि आप के प्रियजन का प्रवेश, देश-काल अनुकूल नहीं है तो भी आप सुखी नहीं रह सकते । अतः महर्षि दयानंद ने लिखा है—

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति से ही संतुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

—आर्यसमाज का नियम 9

सुखी जीवन की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित बातों को आचरण में लाना चाहिये--

1. शारीरिक विकास, 2. आर्थिक प्रगति, 3. आत्मिक उन्नति, 4. सामाजिक कर्त्तव्य, 5. आस्तिक बुद्धि, 6. गुण ग्राही बनना आदि ।

इतना ही कहना काफी होगा कि कुछ भी पाकर हृदय की तरंगें शांत एवं तृप्त नहीं होती क्योंकि हृदय तो प्रभु मिलन के लिए बना है । संसार में क्षणिक सुख तो है और उसके साथ दुःख भी भोगना पड़ता है ।

परन्तु सच्चा सुख (आनंद) कहीं भी नहीं है जैसे ''सेवक''के शब्दों में :–

न इस संसार में सुख है और न परिवार में सुख है ।
न सुख है, नौकरी में और न कारोबार में सुख है ।।
न कोठी में, न बंगले में, न मोटरकार में सुख है ।
न हीरे मोती, सोना चांदी के भण्डार में सुख है ।।
न ऐश में, न कैश में, न मौज बहार में सुख है ।
न कुर्सी में, न लीडरी में, न राज दरबार में सुख है ।।
ऐ 'सेवक' नहीं इस दुनियाँ के बाज़ार में सुख है ।
अगर सुख है तो उस प्यारे प्रभु के प्यार में सुख है ।।

धारण करने का नाम ही धर्म है । अतः मैंने लिखा है–

धर्म न मन्दिरें मिले धर्म न मस्जिद में मिले ।
धर्म न गिरजे में मिले धर्म न गुरुद्वारे में मिले ।
धर्म न ग्रंथों में मिले धर्म न हाट बिकाये ।
धर्म उसे ही मिले जो इसको अपनाये ।।

कोई भी धर्म हो परन्तु सब का धर्मी (परमात्मा) एक ही है जिसको पौराणिक भाई परमात्मा कहते हैं, आर्य समाजी उसको ओ३म् कहते हैं, बौद्ध उसको शून्य कहते हैं, जैन उसको निरंजन कहते हैं, सिक्ख उसको सतश्री अकाल कहते हैं, अंग्रेज़ उसे गॉड कहते हैं, मुसलमान उसे अल्लाह कहते हैं, पारसी उसे अहुरमज्द कहते हैं, लाओत्सी उसे ताओ कहते हैं । परन्तु ये सब उसी एक परमात्मा के अपनी-अपनी विभिन्न भाषाओं में नाम है । परन्तु संसार के सब व्यक्तियों का परमात्मा केवल एक ही है ।

अतः संसार के सब पंथों, ग्रंथों, सम्प्रदायों, आन्दोलनों आदि के ग्रंथों, सम्प्रदायों, आन्दालनों आदि के ग्रंथों का अध्ययन एवं अनुशीलन

करने के उपरांत मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सारी मानव जाति का एक ही धर्म है वह मानवता । यही आज बहुत ही कम लोगों के जीवन में देखने को मिलती है । प्रत्येक सम्प्रदाय की अपनी प्रथाएं, पूजा-पद्धतियाँ आदि पृथक-पृथक हैं परन्तु सब सम्प्रदायों का मुख्योद्देश्य एक ही है जैसे एक पंजाबी कवि ने लिखा है–

धर्म इक है सारयाँ बन्दयाँ दा, न दो, तिनए चार होंदे ।
धर्म खातिर जो लड़दे ने, बेड़े उन्हाँ दे कदे न पार होंदे ।

इसी प्रकार श्री बी.डी. कालिया 'हमदम' साहिब लिखते हैं–

हममज़हिब (धर्मों) क़ौम फिकरों में ही बंट कर रह गये ।
बर्रे आजम (महाद्वीप) जज़ीरों में सिमट कर रह गये । ।
अतः सारे धर्मों का सारामृत है नेक बनो और नेकी करो ।
आकर चारि लाख चौरासी । जाति जीव जल थल नभ वासी ।
सीया राममय सब जग जानी । करऊ प्रनाम जोरि जुग पानी । ।

–रामचरितमानस (बालकाण्ड)

संतशिरोमणि तुलसीदास जी अपनी सर्वश्रेष्ठकृति 'रामचरित-मानस'' में कहते हैं कि इस संसार में 84 लाख योनियों में चार प्रकार के जीव हैं–एक जरायुज, जो हम मनुष्य हैं वे गर्भ से उत्पन्न होते हैं, दूसरे अण्डज जो अण्डों से उत्पन्न होते हैं । जैसे पक्षी आदि तीसरे स्वेदज जो पसीने से उत्पन्न होते हैं जैसे मच्छर आदि चौथे उद्भिज जो पृथ्वी से पैदा होते हैं जैसे वृक्ष और वनस्पतियां । 84 लाख योनियों का विवरण निम्नलिखित है जोकि लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कृत ''गीता-रहस्य'' नामक ग्रंथ में पृष्ठ 185 पर अंकित है–

मनुष्य	=	4 लाख
पक्षी	=	10 लाख

जल जन्तु	=	7 लाख
पशु	=	20 लाख
कीड़े मकोड़े	=	10 लाख
जड़ योनियाँ	=	33 लाख
कुल जोड़	=	84 लाख

इन सब में मुझे सीयाराम दृष्टिगोचर हो रहा है। वस्तुतः जैसे व्यक्ति की दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि होती है। पहले तुलसी अपनी पतनी रत्नावली के प्रति अत्यधिक आसक्त थे। एक दिन वह उन्हीं की अनुपस्थिति में अपने भाई के साथ अपने मायके चली गई फिर क्या था तुलसी दास भी अपनी पत्नी की खोज में निकले और अपने ससुराल पहुँच गये। परन्तु रत्नावली ने तुलसी दास जी को ताना मारा और कहा–

लाज न आवत आपको दौरे आएहुं साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौ मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तापै ऐसी प्रीति।
जो होती श्री राम महँ होती न तो भवभीती।।

आपको शर्म नहीं आती जो मेरे पीछे-पीछे दौड़े चले आए। ऐसा भी क्या प्रेम हो गया? मेरे इस हाड-मांस के शरीर से जितना प्रेम है उतना प्रेम यदि श्रीराम के चरणों में होता तो आपको संसार की इतनी मोहमाया न होती। ये शब्द सुनकर तुलसी दास का हृदय ही बदल गया और वे वापिस चले गये। रत्नावली ने पूछा–''कहाँ जा रहे हो?'' इस पर तुलसी ने उत्तर दिया– उस राम के चरणों में जिसने प्रेम करने का उपदेश अभी-अभी तुमने दिया है। रत्नावली ने कहा कि आप बुरा मान गये और हाथ पकड़ लिया और कहा– मैं आपको जाने नहीं दूंगी। इस

पर तुलसीदास ने कहा अब तुम मुझे रोक नहीं सकोगी। मेरी गृहस्थी आज पुरी हुई।

इस प्रकार इन शब्दों को सुन कर तुलसीदास का मोह भंग हो गया। उनका नारी प्रेम नारायण प्रेम में परिवर्तित हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने गृहस्थ का परित्याग करके साधुवेश धारण कर लिया। इसके उपरान्त वे राम के अनन्य भक्त बन गये। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में लिखा–

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोमिहि प्रिय निमि दाम।
तिमि रघुराथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।

वस्तुतः सारे वेदों का सार उपनिषदें हैं और उपनिषदों का सार गीता है और गीता का सार गीता के 18वें अध्याय का 66वां श्लोक है जोकि इस प्रकार है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

तू सब अधर्म को छोड़ ले मेरी राह
तू माँग आके दामन (निकट) में मेरे पनाह (शरण)।
तेरे पाप सब दूरकर दूँगा मैं,
न गमगीं (शोक) हो मसरूर (आनन्दित) कर दूँगा मैं।

इस श्लोक का अर्थ शरणागति। प्रभु की शरणगति से पाप सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है परन्तु किये गये कर्मों को अवश्य भोगना पड़ता है। जैसे महाभारत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है–

ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभारम्भ।।

बिना भोगे कर्मों का नाश करोड़ों कल्प भी नहीं होता । शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है ।

परन्तु ईसाई भाई कहते हैं कि ईसा पर ईमान ले आओ किये हुए पाप नहीं भोगने पड़ेंगे और मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद साहिब पर ईमान ले आओ तो किये हुए पापों से छुटकारा हो जायेगा । परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि इससे पाप और बढ़ेंगे । नत्थासिंह ''निर्दोष'' लिखते हैं–

न रेशमी दुशालों से न भस्मी लगाने से ।
बंदा पहचाना जाता है अपने आमालों से ।।

अंततः इतना ही कहना काफी होगा कि हम उपदेश देते हैं टन भर, सुनते हैं मन भर परन्तु अमल करते हैं कण भर । क्या संसार के बड़े-बड़े उपदेश जो कहते हैं वे उस पर अमल करते हैं ? यदि करते हैं तो मैं उन्हें बधाई देता हूँ और यदि नहीं करते तो मुझे उनके हाल पर अफ़सोस आता है । इसके विषय में एक कविता प्रस्तुत है–

उपदेश तो करना सीख लिया ।
मन साफ भी करना सीखा है ।।
लोगों को डराने ईश्वर से ।
क्या आप भी डरना सीखा है ?
गुफ़्तगू (बातचीत) तो तेरी मीठी है ।
दिल की बातें ख़ुदा जाने ।
खल्क़त (जनता) को समारे बातों से ।
क्या खुद भी समरना सीखा है ?
तू ज्ञान ज्ञान सुनाता है ।
क्या ध्यान कभी भी लगाया है ?

जिस देश का तू खाता है ।
उस देश पे मरना सीखा है ।।
तक़रीर (भाषण) तेरी ऐसी है ।
लाखों मस्त कर डाले ।।
क्या मुँह से बातें करता है ?
क्या हाथ से करना सीखा है ?

—वीरजी (लुधियाने बाले)

दिनांक 1-10-2020

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618
Website : www.dpkapoorbook.co.in